अरवरी नदी
के पुनर्जन्म की कथा

प्रो. मोहन श्रोत्रिय - अविनाश

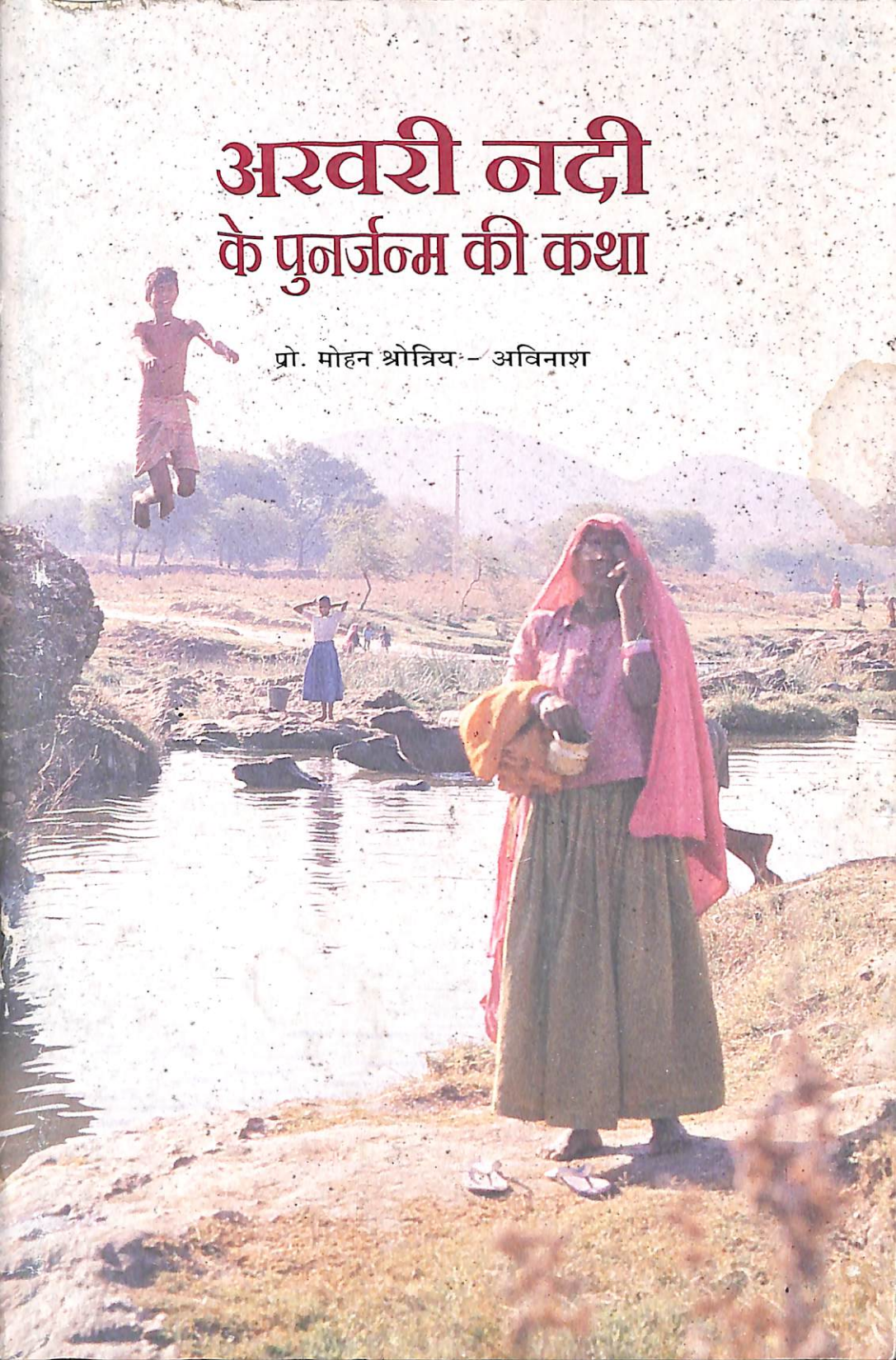

अरवरी नदी
के पुनर्जन्म की कथा

◆

प्रो. मोहन श्रोत्रिय - अविनाश

◆

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा, थानागाजी, अलवर-301 022

आभार

हम उन सभी संस्थाओं व व्यक्तियों के हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य में सहयोग किया है। **इक्को**, नीदरलैंड्स और **इंटर कार्पोरेशन**, स्विट्जरलैंड ने हमें आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई, इसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। अरवरी जलागम क्षेत्र के लोगों की कड़ी मेहनत का ही परिणाम है कि यह नदी पूरे साल सजल रहती है, प्रवहमान रहती है। उनकी समझ व श्रम - निष्ठा को मैं प्रणाम करता हूं। मैं उन सभी स्वैच्छिक कार्यकर्त्ताओं के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ जिन्होंने इस नदी को पुनरुज्जीवित करने में समुदाय का सक्रिय साथ दिया है।

प्रो. मोहन श्रोत्रिय और युवा कवि **अविनाश** ने नदी के पुनर्जन्म की कथा का बखान बहुत ही प्रभावशाली ढंग से किया है। प्रो. श्रोत्रिय ने जनजीवन पर नदी-जोहडों के प्रभाव का अध्ययन भी बड़े वस्तुपरक ढंग से किया है। दोनों के प्रति हमारी कृतज्ञता।

राजेन्द्र सिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

प्रथम संस्करण : दिसंबर 1997
प्रकाशक : तरुण भारत संघ
मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर
छाया चित्र : जय नागरा, माया माज़ा, फरहाद बानिया, रुस्तम बानिया
आवरण चित्र : अरवरी नदी के किनारे बैठे देश के जाने-माने पर्यावरणविद् एवं हमीरपुर गाँववासी

अरवरी नदी....

ढाणी-ढाणी बहती जाये

आज हमीरपुर एक ऐसा तीरथ बन गया है, जहां दूर-दराज से लोग पानी की एक वेगवती धारा अपने दिल में उतारने आते हैं। उन तमाम पानीदार बने चेहरों को देखने आते हैं, जो एक पूरे सूखे दौर में सूख कर कांटे जैसे हो गये थे। ऐसा भी कभी हुआ है कि जो धारा कभी बारहमासी नहीं रही, वह गांववालों के एक सहज प्रयास से पूरे साल भर बहने लग गयी हो। अरवरी नदी का किस्सा कुछ ऐसा ही है। इस नदी ने हमीरपुर के लोगों के सहज प्रयास से हमीरपुर और अपने जलागम क्षेत्र में पड़नेवाले तमाम गांवों की दीन-दुनिया ही बदल दी।

अरवरी नदी की सभी जलधाराएं उत्तर से दक्षिण की तरफ बहती हैं। इसकी मुख्य धारा भांवता गांव के पास से शुरू होती है और दूसरी जलधारा कांकड़ की ढाणी से शुरू होती है। ये दोनों धाराएं प्रतापगढ़-अजबगढ़ रोड को पार करती हुई चांदपुरा गांव के पास मिल जाती है। यहां से एक होकर आगे बढ़ने लगती है। हमीरपुर गांव के पास जाकर यह धारा एक नदी के रूप में दिखाई देने लगती है। हमीरपुर से नीचे

जाकर जगन्नाथपुरा, पैड़्याला एवं पिपलाई की तरफ से आनेवाली धारा भी समरा गांव के सामने जाकर इस नदी में मिल जाती है। फिर यह मुख्यधारा कालैड़ को पार करते ही डगोता, बस्सी की तरफ से आनेवाली धारा को अपने में समा लेती हैं और श्रीनगर गांव के पास से होती हुई सैंथल सागर में विलीन हो जाती है। यह अरवरी नदी की मुख्य धारा है। इसकी लंबाई लगभग 45 किलोमीटर है। सैंथल सागर के मिलने के स्थान पर ही इसमें एक और धारा, जो कि हमीरपुर गांव के नाहरनाला नामक स्थान से शुरू होती है, जैतपुर गुजरान, नटाटा और थली होते हुए श्रीनगर गांव के पास जाकर मुख्यधारा में मिलती है। तीसरी जलधारा लोठावास व हमीरपुर के पीछे के पहाड़ों से शुरू होती है और सानकोटरा, आंधी, थली होते हुए सैंथल सागर में जाकर मिलती है। चौथी धारा नागेल गांव के पहाड़ से शुरू होकर दारोलाई, रायसर से गुजर कर मुख्यधारा में मिल जाती है। इस प्रकार इस पूरी नदी का कुल जलागम क्षेत्र पांच सौ तीन वर्ग किलोमीटर है। यह पूरी नदी अरावली पर्वत-शृंखलाओं के तेज ढलान में होती हुई जाती है। इसका जलागम क्षेत्र मध्यम दरजे की ऊंचाईवाली पहाड़ियां हैं।

इसके जलागम क्षेत्र में तीस प्रतिशत से भी कम भूमि खेती योग्य है। 1985-86 में तो दस प्रतिशत भूमि पर भी खेती नहीं हो रही थी। इस नदी के जलागम क्षेत्र में जिस भूमि पर खेती होती है, वह चिकनी पथरीली मिट्टी है। इसलिए काफी उपजाऊ भी है। बीच के दौर में इसका जलागम स्रोत नंगा हो जाने के कारण जमीन का उपजाऊपन घट गया था। क्योंकि पहाड़ों से वर्षाजल के साथ कंकड़-पत्थर आकर खेती की जमीन पर जम जाते थे। अब पुनः पहाड़ों पर कुछ हरियाली हो जाने से यह समस्या कम हो गयी है। और अब पानी के साथ यदि कुछ आता है, तो उसमें सड़ी-गली पत्ती व गोबर के कण आते हैं जिससे जमीन का उपजाऊपन बनने लगा है।

जो गांव भौतिक और भावनात्मक रूप से निर्जल हो गये थे, उनको सजल रूप में देखने का सुख ही कुछ दूसरा है। अरवरी नदी के जलागम क्षेत्र में पड़नेवाले कुछ गांवों का जिक्र यहां हम करेंगे।

अरवरी की मुक्तियात्रा से मुक्त हुआ हमीरपुर

नदियों की मुक्तियात्रा में गांवों की मुक्ति भी शामिल होती है। जिस गांव से होकर नदी बहती है, वहां के लोगों का मन पंछी की तरह उन्मुक्त होता है। उस मन पर किसी के काबिज होने की जरा-सी बात के खिलाफ वे खड़े रहते हैं। हमीरपुर में अरवरी नदी के बहने से लोगों का डर ही खत्म हो गया। महिलाएं बताती हैं कि जब गांव में पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी, तो पानी को लेकर कठिन संघर्ष था। जिसके कुओं में जरा-सा भी पानी बचा था, वे दूसरों को वहां फटकने तक नहीं देते थे या जरा-सा पानी लेने देते और हजार तरह की बातें कहते। तब वह सब बर्दाश्त कर लेना पड़ता था। अब तो गांव में पानी ही पानी है। अब न तो अभाव है, न ही डर। 'समाज उठेगा पानी के काम से' की भावना रखने वाले रूढ़मल मीणा ने सबसे पहले अपने गांव के समाज को उठाने की पहल की। अरवरी नदी पर बने जब्बर सागर बांध में इनकी पांच बीघा सिंचित जमीन डूब जाएगी, यह जानते हुए भी इन्होंने संस्था को बांध बनाने की अनुमति दी। नतीजतन लगभग सौ-सवा सौ साल पुरानी सूखी यह नदी सजल हो उठी।

जलचर बचाओ आंदोलन

अरवरी नदी और इस पर अपने अधिकार को लेकर जितना संघर्ष हमीरपुर के लोगों ने किया, वह आंखों पर अंजन उतारने की तरह है। हमीरपुर की सामलाती जमीन पर अरवरी नदी के बहने के साथ ही व्यवस्था के कारिंदे इसके आसपास मंडराने लगे। व्यवस्था के कारिंदों ने जब देखा कि प्राकृतिक संसाधनों (जल, जंगल, जमीन और जीव) के संरक्षण का काम हमीरपुर के लोग स्वयं करने लगे हैं, तो उनके दोहन के लिए तरह-तरह की तरकीब गढ़ने लग गये। तिकड़में लगाने लगे। अरवरी नदी और हमीरपुर के लोगों के बीच के रिश्ते को खत्म करने के लिए सरकार ने सबसे पहला हथियार मछलियों का ठेका देकर चलाया। ठेकेदार जयपुर जिले का रहनेवाला था। मत्स्य विभाग के अधिकारियों के साथ मिलकर उसने 18 हजार सात सौ रुपये में ठेका अपने नाम करवाया था। इस ठेके को देने से पूर्व नियमानुसार न तो आसपास के गांवों में सूचना जारी की गयी, न ही स्थानीय समाचारपत्रों में प्रकाशित करवाया गया और न ही स्थानीय ग्राम पंचायत से अनापत्ति प्रमाण-पत्र लिया

गया। बिना किसी आहट के यह सारा कार्य हो गया। गांववालों के सामने तो यह बात तब खुलकर आयी, जब 21 नवंबर '96 को ठेकेदार नाव लेकर दल-बल सहित हमीरपुर आ धमका। गांववालों ने रास्ता रोक लिया और उन्हें आगे बढ़ने ही नहीं दिया। उन्होंने ठेकेदार से कहा कि हम इस नदी से किसी को भी मछली पकड़ने नहीं देते। पकड़नेवालों पर 11 रुपये से लेकर 11सौ रुपये तक का दंड करते हैं। उन्होंने अपने गांव तथा आसपास के गांववालों पर किये गये दंड के उदाहरण भी बताये।

अरवरी जलागम क्षेत्र के लोग तरुण भारत संघ के आश्रम में जल संरक्षण की चर्चा करते हुए

ठेकेदार अपनी जिद पर अड़ा रहा पर अरवरी नदी की एकदम नयी और चमकती हुई धारा ने लोगों में अद्‌भुत उत्साह और ऊर्जा को पैदा कर दिया था। उन्होंने भी सरकार से लोहा लेने की ठान ली और **जलचर बचाओ आंदोलन** का सूत्रपात कर दिया। **जलचर बचाओ आंदोलन** शुरू हुआ नवंबर 1996 में। ठेकेदार द्वारा मछली पकड़ने की जिद को लेकर आपसी विवाद बढ़ा और बढ़ता ही चला गया। गांव की सभी महिला, पुरुष, एवं बच्चे तक ठेकेदार के रास्ते में अड़ कर खड़े हो गये। दूसरे दिन ठेकेदार समरा

गांव पहुंचा। पर वहां भी गांववालों ने मछली नहीं पकड़ने देने के अपने नियम बताये। सवाल किया कि उनकी नदी में पानी उनके ही प्रयासों से आ रहा है, सरकार ने पानी लाने का कोई प्रयास ही नहीं किया, फिर आप यहां मछली पकड़ने कैसे आ गये।

बात सच थी। सूखे के दौर में जब सूख कर इकहरे हो गये थे लोग, सरकार झांकने तक नहीं आयी थी यहां। अपनी रियाया से यह तक पूछने नहीं आयी कि घर में नमक है या नहीं ? घड़े में पानी है या नहीं ? तब शाही खजाने का इस्तेमाल कथित विकास की पगडंडियां दुरुस्त करने में हो रहा था। अलबत्ता जब गांववालों ने स्वयं के ऐतिहासिक प्रबंधन से अपनी जिजीविषा को सजल किया, तो सरकार उसमें आग लगाने के लिए आ धमकी। इस सच का बल पाकर जब गांववालों ने उस ठेकेदार को खरी-खरी सुनायी, तो वह अपनी नाव गांव में छोड़कर चला गया।

गांववालों ने मछली नहीं पकड़ने दी, तो ठेकेदार ने एक शिकायत मत्स्य परियोजना अधिकारी अलवर के कार्यालय में दर्ज करादी। मत्स्य परियोजना अधिकारी ने इस मामले में तरुण भारत संघ को शामिल पाकर दो दिसंबर '96 को एक पत्र तरुण भारत संघ को भेजते हुए लिखा कि अरवरी नदी (कालैड़, लालपुर और नटाटा, जिला अलवर) का ठेका प्रतिवर्ष दिया जाता है। हमीरपुर के ग्रामवासियों द्वारा मत्स्य ठेकेदारों को मछली नहीं पकड़ने दिया जा रहा है। तीस नवंबर को निरीक्षण के दौरान पाया गया कि एक नया एनीकट जो गांववालों द्वारा संस्था के सहयोग से बनाया जा रहा है, उस पर मछली पकड़ने से गांववालों को आपत्ति है। उन्होंने लगभग धमकी भरे लहजे में यह भी लिखा कि किसी भी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न होने की दिशा में संस्था के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जाएगी। यहां यह उल्लेखनीय है कि मत्स्य ठेकेदारों को मछली पकड़ने से संस्था के कार्यकर्ताओं ने नहीं, गांववालों ने रोका था।

व्यवस्था का एक अमानवीय पहलू मत्स्य परियोजना अधिकारी के उस धृष्टतापूर्ण बयान से भी साफ हो जाता है, उसने लगभग क्रूरता भरे अंदाज में गांववालों के सामने दिया, **अगर हम ऐलड्रिन (जहरीली दवा) डाल देंगे,**

तो सब मछलियां मर जाएंगी। तब तुम क्या कर लोगे ? मत्स्य परियोजना अधिकारी ने अपने इशारे पर प्रतापगढ़ थाने की पुलिस को ठेकेदारों के साथ हमीरपुर भिजवाया। पुलिसवालों ने अपना रटा-रटाया जुमला गांववालों के सामने उछाला। अगर मछलियों का शिकार नहीं करने दोगे, तो हाजत में डाल दिये जाओगे। सरकारी कार्य में बाधा डालोगे, जेल में बंद कर दिये जाओगे। आदि-आदि।

यहीं से शुरू हुआ **जलचर बचाओ आंदोलन**। आंदोलन ने अरवरी नदी में मत्स्य आखेट के मुद्दे पर मत्स्य परियोजना अधिकारी (अलवर) को

जलचर बचाओ आंदोलन की नीति तय करते हुए हमीरपुरवासी

ज्ञापन देकर बताया कि अरवरी नदी पर लालपुरा, भांवता, कालैड़ से नटाटा तक ग्रामवासियों ने पर्यावरण संरक्षण हेतु इस क्षेत्र में गत 11 वर्ष में एक सौ इकसठ जोहड़/बांध/एनीकट बनाये हैं तथा अभी बनाये जा रहे हैं। इन्हीं कार्यों के कारण नदी में इन गत दो वर्षों से पूरे साल भर पानी रहने लगा है। जबकि सरकारी रिकार्ड में यह नदी मौसमी नदी थी। यहां किसी ठेकेदार के मछली पकड़ने आने का यह पहला मौका है। इससे पहले कोई भी ठेकेदार यहां मछली पकड़ने नहीं आया था। क्योंकि पहले यह नदी सूखी रहती थी। गांव भांवता, भूरियावास, लालपुरा, पलासना, सावतसर, खडाटा, खाटाला, डूमोली, चौसाला, नागेल, चावा का वास, जगनाथपुरा और हमीरपुर के नागरिकों के ऐतिहासिक व अथक परिश्रम से यह नदी अब सजल हो गयी है। इसमें जीव-जंतु पलने लगे हैं।

गांववासियों ने **जलचर बचाओ आंदोलन** के माध्यम से संकल्प लिया है। इस क्षेत्र की जैविक विविधता के संरक्षण के लिए नदी में किसी भी प्रकार का आखेट न होने देंगे, न स्वयं करेंगे। बाहर के किसी भी व्यक्ति को आखेट करने देने का तो कोई सवाल ही नहीं है। सरकार ने जब इस नदी को सजल नहीं किया, तो उसे उसमें मछली पकड़ने या पकड़वाने का कोई हक नहीं है। मनुष्यों के साथ-साथ अन्य जीवों को भी जीवित रहने का अधिकार है। उन्होंने मत्स्य विभाग को भी साफ शब्दों में बता दिया है कि नदी पर लालपुरा से नटाटा के बीच दिया मत्स्य आखेट का ठेका तुरंत रद्द किया जाये।

आज विश्व से लेकर गांव स्तर तक जैव विविधता संरक्षण के लिए करोड़ों रुपये खर्च कर परियोजनाएं चलायी जा रही हैं। उनमें समुदाय की भागीदारी पर जोर दिया जा रहा है। भारत का उच्चतम न्यायालय व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर भी अब समुद्र में मछलियां पकड़ने पर रोक लगा रहा है। वहीं दूसरी ओर यह कितना हास्यास्पद और विडंबनापूर्ण है कि स्थानीय लोगों द्वारा और बिना किसी खर्च के अपनी धार्मिक व सामाजिक आस्थाओं के कारण जैविक विविधता का जो संरक्षण किया जा रहा है, सरकार से उसे मान्यता मिलने के स्थान पर उल्टे डराया और धमकाया जा रहा है।

लालपुरा गांव की महिलाएं जंगल को सघन बनाने तथा जल-संरक्षण की चर्चा करते हुए।

कथा हमीरपुर

अलवर से प्रतापगढ़ जानेवाली मुख्य सड़क से एक किलोमीटर की दूरी पर है हमीरपुर गांव । इस गांव का ग्राम पंचायत मुख्यालय समरा है, जो यहां से मात्र तीन किलोमीटर की दूरी पर है । रियासत के समय में यहां दो घोड़ों की जमींदारी रही थी । यहां जागीरदार निमवाल गोत्र की मीणा जाति के लोग रहे हैं । पटेल लालूप्रसाद मीणा की तीन चौक की हवेली आज भी मौजूद है, जिसको यहां के लोग **बड़ी जाग** के नाम से पुकारते हैं । हवेली में लालू पटेल वंश के चालीस परिवार निवास करते हैं । इस गांव में तीन सौ घरों की आबादी में मीणा जाति के लोग ही सबसे अधिक हैं । सभी मीणा निमवाल गोत्र के हैं । गांव के बुजुर्ग नाथू पटेल बताते हैं कि जागीरदारी के समय दूर-दूर तक डंका बजता था जागीरदारों का । मतलब उनकी हुकूमत दूर-दूर तक थी। उसका डर दूर-

हमीरपुर के जब्बर सागर बांध के ऊपर से बहती अरवरी

अरवरी के पुनरुज्जीवित होने से महिलाओं की रोजगार मिल गया है।

दूर तक था। लगभग नौ शताब्दी पहले यहां एक महात्मा रहा करते थे। पुकारे जाते थे सिद्ध महाराज के नाम से। बड़े बुजुर्ग कहते हैं, उन्हीं की देन है हमीरपुर गांव में लोगों की बसावट। इस महात्मा के नाम से एक पवित्र स्थान गांव की पूर्व दिशा में सुरक्षित है।

आज यहां दारू पीनेवाले लोग बिल्कुल ही नहीं हैं। इस गांव में दो सौ घर मीणा जाति के हैं। चार घर कुम्हारों के, तीस घर रैगरों के, दस घर बलाई और बत्तीस घर कोली समाज के हैं। चार घर बनियों के हैं, जिन्हें **बौरा बाबा** के नाम से पुकारा जाता है। दो घर ब्राह्मणों के हैं, जो गौड़ हैं और 18 घर हरियाणवी ब्राह्मणों के हैं। गांव का कुल क्षेत्रफल 12,800 बीघे का है, जिसमें कृषि भूमि का रकबा तीन हजार बीघा है। 1300 बीघा गोचर भूमि है। शिक्षा का एकमात्र साधन यहां प्राथमिक स्तर का एक सरकारी स्कूल है। मुख्य व्यवसाय पशुपालन व खेती है।

दस साल पहले इस गांव में पानी का बहुत अभाव था। ढंग से न तो पशुपालन का रोजगार ही हो पाता था, न ही खेती का। यही वजह थी कि हमीरपुर की लगभग आधी आबादी शहर जाकर रोजगार में लगी हुई थी। गांव वीरान और उजड़ा-उजड़ा-सा लगता था। कुल 70 कुएँ हैं गांव में, जो गरमियों के महीने में सूख जाते थे। एक कुआं था पिपलीवाला, जिसमें थोड़ा-थोड़ा पानी बचा रहता था। वह पीने के उपयोग में ही किसी तरह आता था, खेती तो एकदम असंभव थी। स्थिति इतनी विदारक हो गयी थी कि गांववालों ने गांव छोड़ने का सामूहिक मन बना लिया था। पर कहावत है कि "बिलाई के भाग का छींका टूटा"। तरुण भारत संघ की पदयात्रा इस गांव से होकर गुजरी। एक पड़ाव हमीरपुर भी बना। गांववालों और संस्था के कार्यकर्ताओं में बातचीत हुई। इस संवाद को मूर्तरूप पांच जोहड़ों के रूप में मिला। इन जोहड़ों का पानी रुकने लगा। कुओं का जलस्तर भी ऊंचा हो गया। पानी आया, तो बदलने लगा हमीरपुर और आज वह पूरी तरह बदल गया है। तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता कुंजबिहारी के द्वारा अप्रैल-मई 1997 को किये गये सर्वेक्षण के अनुसार कुओं का जल-स्तर बीस से तीस फुट का हो गया है। पूरी कृषि योग्य भूमि जो परती पड़ी रहती थी अब चालू हो गयी है। गांव में इस वर्ष 40 हजार से लेकर डेढ़ लाख हजार रुपये की आमदनी खेती से हुई है। जहां खाने के लिए एक दाना भी नहीं हो पाता था, वही हमीरपुर अब मालामाल हो गया है। साथ ही यह तीर्थ बन गया है आस-पास के लोगों के लिए। वे बहती नदी को देखने आते हैं।

चराईबंदी

हमीरपुर के पूर्व सरपंच रामधन मीणा ने कहा कि गोचर को तो समाप्त ही कर दिया गया था। खेतों में भी बर्बादी होती रही। जब हमने खुली चराई पर रोक लगायी, तो गरमी-सरदी के मौसम में अब पानी आ जाने के कारण खूब फसलें होती हैं तथा बिना बाड़ किये भी सभी प्रकार की फसलें पैदा होने लगी हैं। चराईबंदी का काम हमने दस वर्ष पहले शुरू किया था। तीन-चार वर्ष तक बहुत अच्छा चला। फिर गांव का

संगठन टूट गया और खुली चराई होने लगी। फिर दुबारा गांव का संगठन बना और पशुओं की खुली चराई पर पाबंदी लगा दी गयी। रामधन मीणा बताते हैं कि अब किसी का पशु भी खुला खेत में घुसता है, तो उस पर 11 रुपये से लेकर 101 रुपये तक दंड लगा देते हैं।

उन्होंने बताया कि अब हमारे गांव का गोचर पुनः खूब हरा-भरा हो गया है। इसीलिए गोचर, सवाईचक, जोहड़ के आसपास चराई की छूट कर दी है। लेकिन चराई की यह छूट पूरे 12 महीने नहीं रहती। केवल गरमी के दिनों में ही छूट दी जाती है। तीन वर्ष से हमारे गांव की नदी वर्ष भर बहने लगी है। इसीलिए अब हम गरमी में भी खुली चराई और खुले पशुओं पर पाबंदी कर रहे हैं। पहले तो पशुओं को पानी के लिए दूर-दूर तक जाना पड़ता था। अब तो पानी गांव में ही मिल जाता है। यहीं के श्रीलाल पंच ने कहा कि अरवरी नदी के पूरे साल भर बहने से हमारे गांव की कायापलट ही हो गयी है।

कुनबे में हरियाली लौटी

हमीरपुर गांव के ग्यारसीलाल ने कहा कि अब तो हमारा गांव तीरथ बन गया है। अब से दस वर्ष पहले मैं रोजी-रोटी की तलाश में जयपुर चला गया था। वहां जिस बनिया के यहां काम करता था, वह 10-15 रुपये मजदूरी देता था। यह इतना भर था कि मेरा पेट भर जाये। जब मैं अपने घर-परिवार के भरण-पोषण के बारे में उससे जिक्र करता, तो वह कहता था कि तू बस अपनी ही चिंता कर। अपना ही पेट भर ले यही बहुत है।

यह थी अरवरी नदी के सूखे रहने की वजह से गांववासियों द्वारा झेले गए कष्टों, दुःख-तकलीफों और शोषण की दास्तान। पर उस वक्त ग्यारसीलाल से रहा नहीं गया। बच्चों को भी उसने काम पर लगा दिया। ऐसे ही तीन-चार साल गुजर गये। ग्यारसीलाल कहता है इस बीच गांव के लोगों ने मिलकर इस नदी पर एनीकट बना लिये थे। इस एनीकट से हमारे गांव में रौनक आनी शुरू हो गयी थी। मेरे खेत के सूखे कुएं में भी

पानी हो गया। और अब भरपेट भोजन और तन ढकने को कपड़ा तो मिलता ही है, पढ़ाई, दवा-दारू और जिंदगी की दूसरी सब जरूरतें भी सहज रूप से पूरी होती जा रही हैं।

सौ हाथ की नार पांच हाथ का पार

हमीरपुर से कुछ आगे एक गांव है कालैड़। अरवरी नदी इस गांव से भी गुजरती है। रामचंदर सरपंच कहते हैं कि यहां कई दशक ऐसे थे, जब गीदड़ की चीख नक्कारखानों की तरह गूंजती। लोग तूती की तरह बिलबिलाते। 1956 में भयानक अकाल पड़ा था। ऐसा कि कालैड़वासी गाते "छप्पन न्यार अकाल मत आज्यो म्हारी दुनिया मा"। फिर '62 में अकाल पड़ा। चारा, अनाज कुछ भी नहीं पैदा हुआ। लोग जंगल में पेड़ के बक्कल (छिलका) को उतार कर खाते। बेर के कांटे पीस-पीस कर खाते थे।

सन् '62 के बाद '74 में आयी बीमारी प्लेग। ऐसी बीमारी, ऐसी महामारी कि गहरी अंधेरी रात में लोग विरहा के स्वर छेड़ते, "बैठबो रेल को, मरबो प्लेग को"। उस समय इस इलाके के लोग रेल से नये-नये परिचित हुए थे। गांव के गांव मरने लगे। जो बचे वे गांव छोड़ कर भागे। कहीं-कहीं निर्जन में झोपड़ियां बनाकर रहने लगे। उस वक्त बड़ी तादाद में कपड़े नहीं थे। एक आदमी के पास एक ही धोती होती थी। वह भी खुद ही सूत कातकर बनाते।

स्थितियां थोड़ी नरम हुईं, तो एक दशक और बीता। पानी की समस्या का कोई समाधान नहीं निकला था। वह जस की तस बनी हुई थी। इन्हीं दिनों तरुण भारत संघ का प्रवेश हुआ था कालैड़ में। उन दिनों चारों ओर चुनावी प्रक्रिया से अलगाव और बिखराव की स्थिति थी। ग्रामीणों में आपस में वैमनस्य था। तरुण भारत संघ ने जुड़ाव की पहल की, तो लोगों में आत्मविश्वास जागा। उन्हें उनकी कहावत याद दिलायी, जो वे कहते-सुनते थे। "सौ हाथ की नार, पांच हाथ का पार।" अर्थात् या तो सौ हाथ का कुआं खोद दो, या पांच हाथ की जोहड़ की पाल

बना दो, प्रभाव एक ही होता है। लोगों ने प्रयोग किया । 1987 में कालैड़ के पश्चिम में बोहणा जी के नाले पर बांडा बड़का बांध बनाया। इसे लोग फूटा बांध भी कहते हैं । लोग बताते हैं कि इससे लगभग 30 कुओं का जलस्तर पहली बरसात के बाद ही बढ़ गया। चेहरा पनियल हुआ तो आंखों में चमक आयी ।

लोग बताते हैं कि कालैड़ में तीन सौ साल पहले कुल 22 बांधों का निर्माण किया गया था । ये बांध लोगों ने अपने श्रमदान से बनाये थे। बांडा बड़का बांध के निर्माण के बाद गांव के दो बुजुर्ग, जो उस समय जीवित थे, उन्हें बरबस याद आ गये वो दिन । दौड़ने लगा उनकी आंखों में सौ साल पहले का पानी । फिर क्या था, तरुण भारत संघ के साथ मिलकर उन्होंने कालैड़ में श्रमदान के पुनर्जीवन की नींव डाली । इधर बांडा बड़का बांध को सफलता मिली, उधर देखते ही देखते यह निर्णय लिया गया कि और भी ऐसे काम करें। लोगों में पानी का उत्साह उमड़-घुमड़ रहा था । उन्होंने फावड़े उठाये और थोड़े ही दिनों बाद देखा कि सबने मिलकर लगभग 60 जोहड़ों - बांधों का निर्माण कर लिया है । पानी के लिए किये गये श्रमदान से गांव का संगठन भी मजबूत होता चला गया । लोग बताते हैं कि इस प्रकार पलायन तो खत्म हुआ ही गांव की ओर लौटने की प्रक्रिया भी आरंभ हो गयी ।

गांववालों को ये बांध एक चमत्कार की तरह लगे । इस चमत्कार से उनके खेतों ने सोना उगला । गांववालों ने सोचा कि क्यों न एक साथ संपूर्ण गांव के जल प्रबंधन के लिए कोई उपाय किया जाये और तय हुआ अरवरी नदी पर बांध/एनीकट का निर्माण । इस तरह कालैड़ गांव के संपूर्ण जल प्रबंधन के लिए 16 जून 1996 को कालैड़ से पूर्व की ओर अरवरी नदी पर टोडीवाले बांध का निर्माण शुरू हुआ । इस बांध को नाम दिया गया कुंज सागर, जिसने पूरे गांव के जल स्तर को अभूतपूर्व रूप से प्रभावित किया ।

कालैड़ की पूरी संस्कृति सामलाती संसाधनों पर टिकी थी । पशुपालन का सबसे बड़ा सहारा थे सामलाती संसाधन । मसलन पहाड़,

गोचर, बीर-बंजर जमीनें । ये सब यहां के लोगों की जिंदगी के आधार थे । गांव की 70 फीसदी जरूरतें इसी से पूरी होती थीं । पर ये संसाधन टिके नहीं। ये सामलाती संसाधन तभी तक टिके रह सकते हैं, जब इनका मालिकाना हक समाज के पास हो । जागीरी के वक्त से लेकर अभी हाल तक इन संसाधनों पर किसी **तीसरे आदमी** का ही हक था ।

अंग्रेजों के दोजख और जागीरी के दंश जब खत्म हुए, तो अपनी ही सरकार के दमन का पहिया चलने लगा । देश आजाद हो गया, लेकिन पूरी की पूरी सामलात देह सरकार की हो गयी । गोचर-जंगल तो रहे, लेकिन इनके प्रबंधन को लेकर गांव के बीच अपनी कोई योजना नहीं रही। इनको लेकर कानून तो पहले भी थे पर इनके उपयोग की छूट मिली हुई थी । अब सरकार के वन विभाग ने उसके उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया। उनकी ओर से इन गोचर जंगलों के तथाकथित विनाश की दुहाई दी जाने लगी । **लोगों की वजह से ये प्राकृतिक संसाधन असुरक्षित हैं** । अलबत्ता विनाश का दौर जारी रहा। वन विभाग के आला अधिकारी रिश्वत लेकर जंगल कटवाने में मशगूल रहे। कालैड़ में काला खैर और कदम्ब के काफी कीमती जंगल थे । ये काफी आकर्षक जंगल थे और गांव की हवाओं में खुशबू बिखेरते रहते थे । पर जंगलात विभागवालों की मिलीभगत से ये जंगल अबाध गति से कटते रहे। इन पेड़ों की लकड़ियां **आंधी** और **जयपुर** के बाजारों में खुलेआम बिकती थीं। जंगल पूरी तरह बर्बाद हो गये ।

पानी की व्यथा तो थी ही, जंगल भी कटकर साफ हो गये, तो लोगों का गांव में रहना दुश्वार हो गया । पलायन का दर्दनाक दौर शुरू हुआ । अपनी जगह-जमीन छोड़कर लोग भागने लगे । '80 के दशक में पलायन की जबरदस्त त्रासदी झेली कालैड़ गांव ने । सन् '84, '85, '86 में सबसे अधिक पलायन गांव में हुआ । पलायन के दौर से गुजर रहे गांव के कुछ बुजुर्गों से तरुण भारत संघ ने संवाद कायम किया । गांव के जंगलों, गोचर पर गांव के हक की बात की । योजना बनायी । इन बातों ने लोगों की संवेदनाओं को झकझोर दिया । इनका तत्काल असर भी हुआ । लोग मिलकर काम करने को तैयार हो गये ।

तरुण भारत संघ के प्रवेश से पहले अंचल का दृश्य - **तब**

तरुण भारत संघ द्वारा किये गये निर्माण कार्य के बाद का दृश्य - **अब**

तब
भांवता की वीरान दृश्यावली

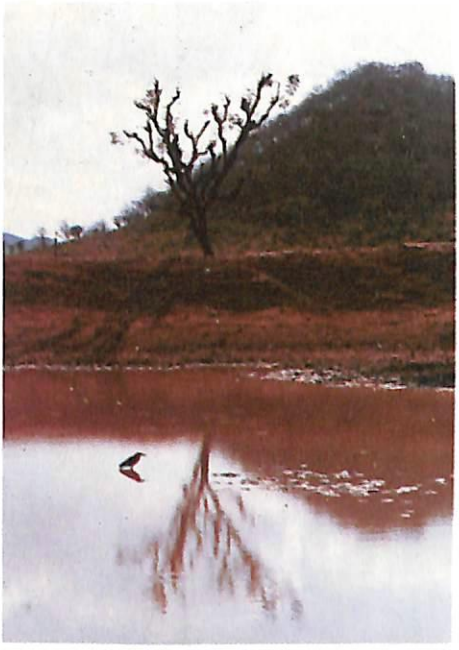

अब
भांवता की हरी भरी दृश्यावली

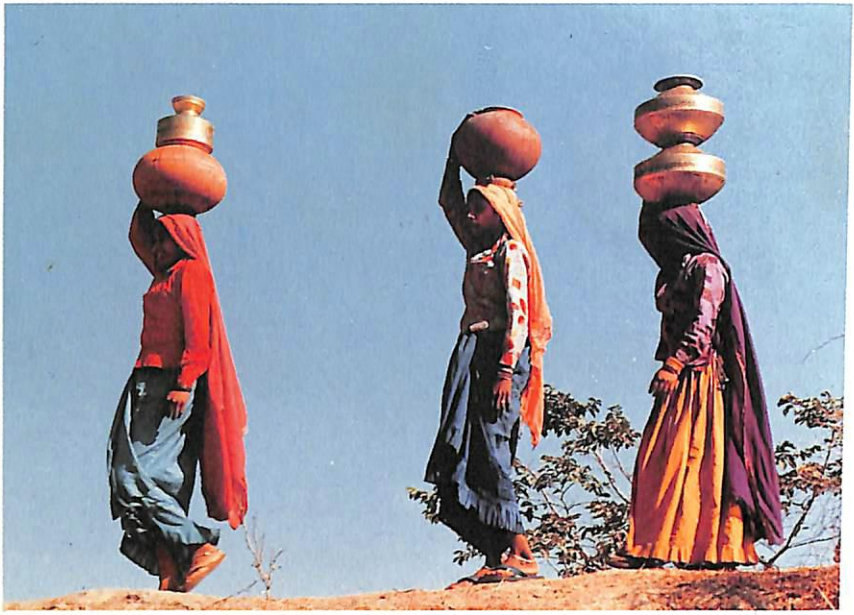

तब
हमीरपुर की महिलाएं पानी लाने जाती हुई

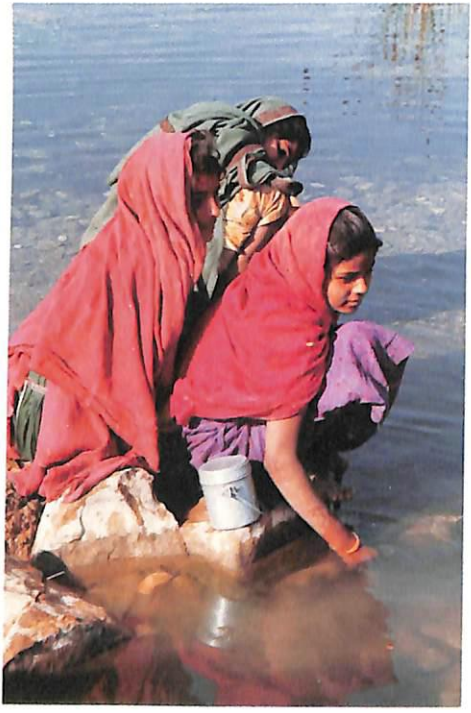

अब
हमीरपुर की युवतियां नदी के बहते जल और तैरती मछलियों को निहारती हुई

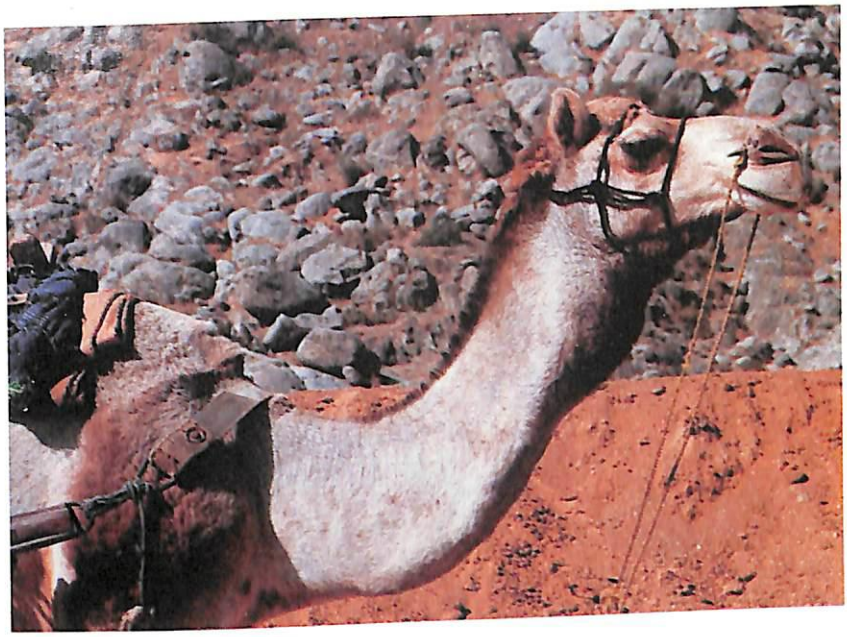

तब - *नंगे पहाड़ के पास खड़ा ऊंट*

अब - *लहलहाते खेत के पास खड़ा ऊंट*

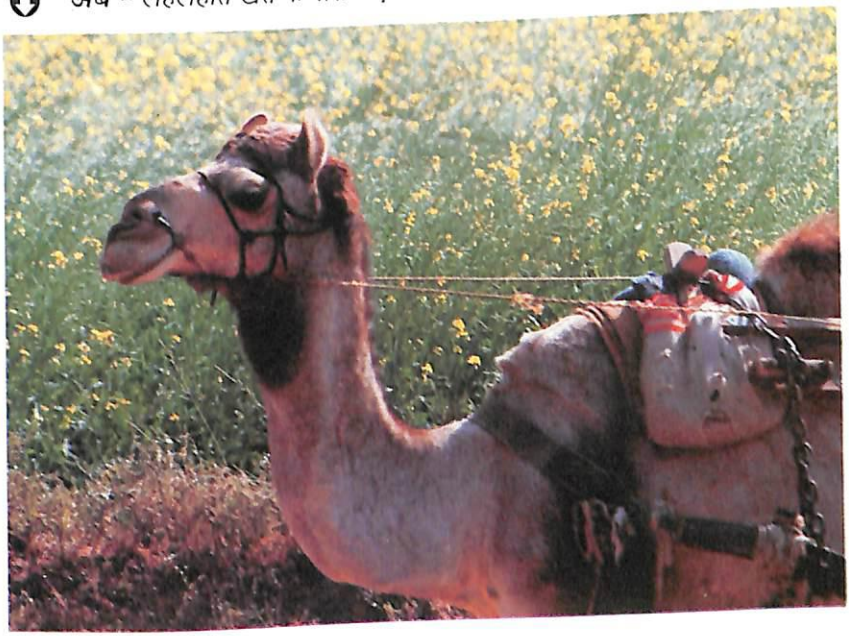

अरवरी नदी का जलागम क्षेत्र

पैमाना - 1:50,000

Mt. 1000 500 1 2 3 4 5 6 1Km.

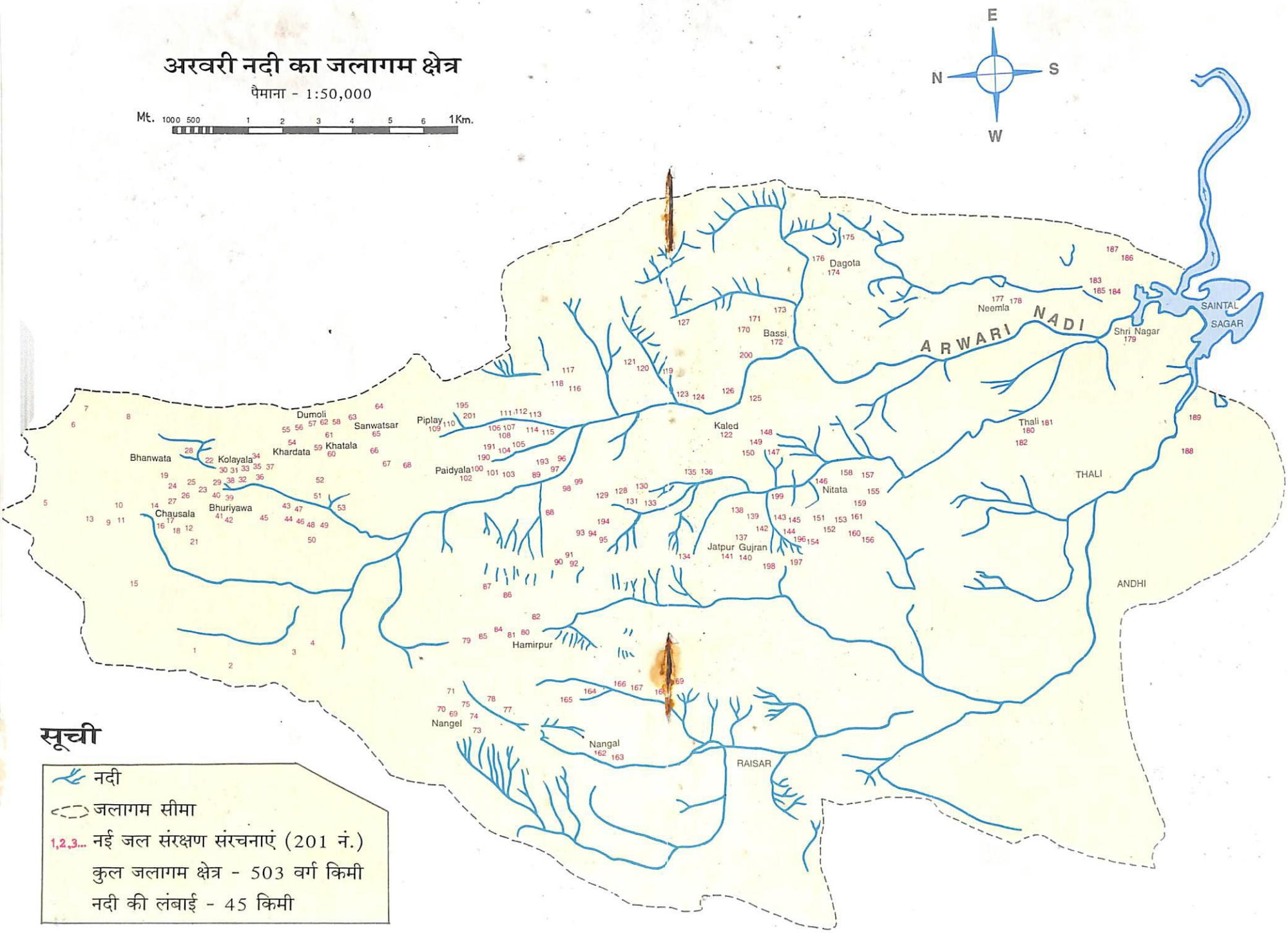

सूची

- नदी
- जलागम सीमा
- 1,2,3... नई जल संरक्षण संरचनाएं (201 नं.)

कुल जलागम क्षेत्र - 503 वर्ग किमी

नदी की लंबाई - 45 किमी

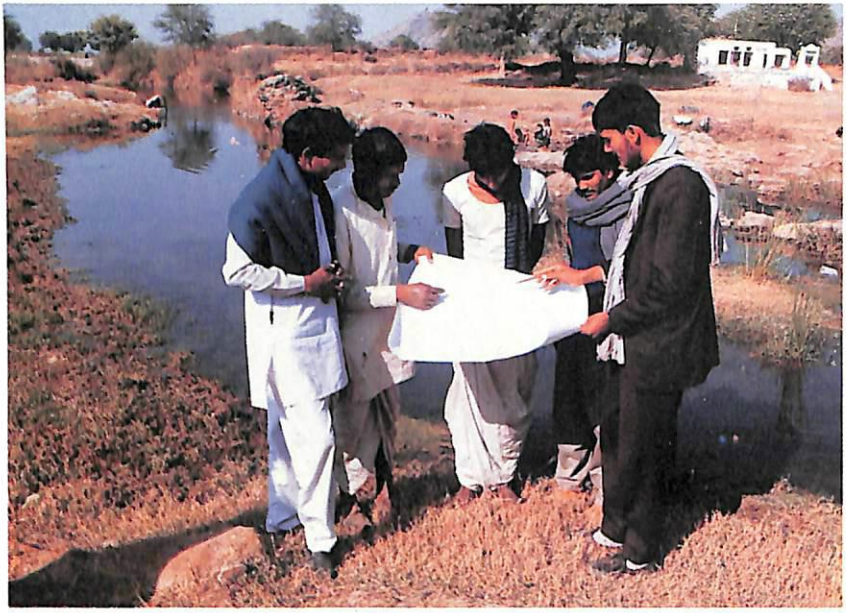

अरवरी नदी पर तरुण भारत संघ द्वारा प्रशिक्षित सिविल इंजीनियर

निर्माण के दौर में हमीरपुर का जब्बर सागर बांध

कालैड़ निर्माण कार्य के दौरान

अपने लहलहाते खेत की मेड़ पर बैठा किसान

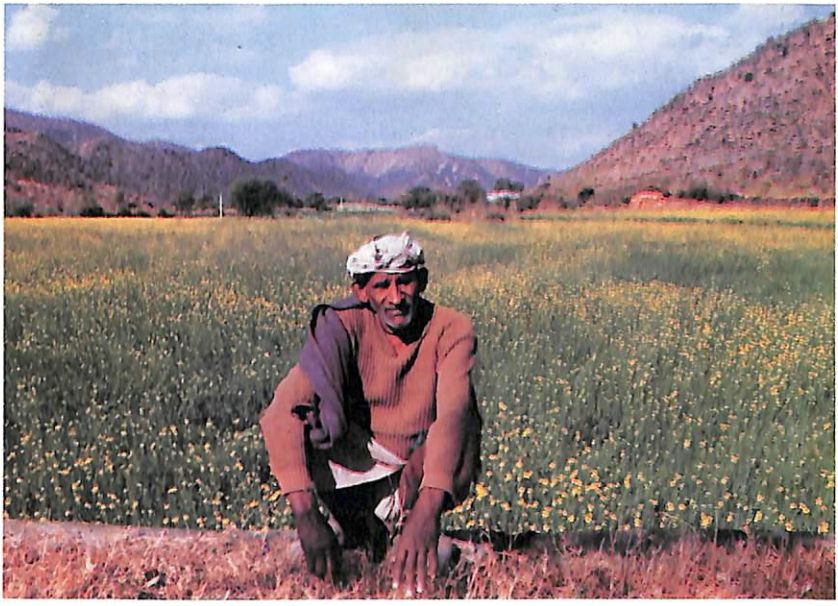

पानी से लबरेज कुएं के पास खड़ी महिला

देवका देवरा गांव में प्रतिरोध का संकल्प (सत्याग्रह का श्रीगणेश)

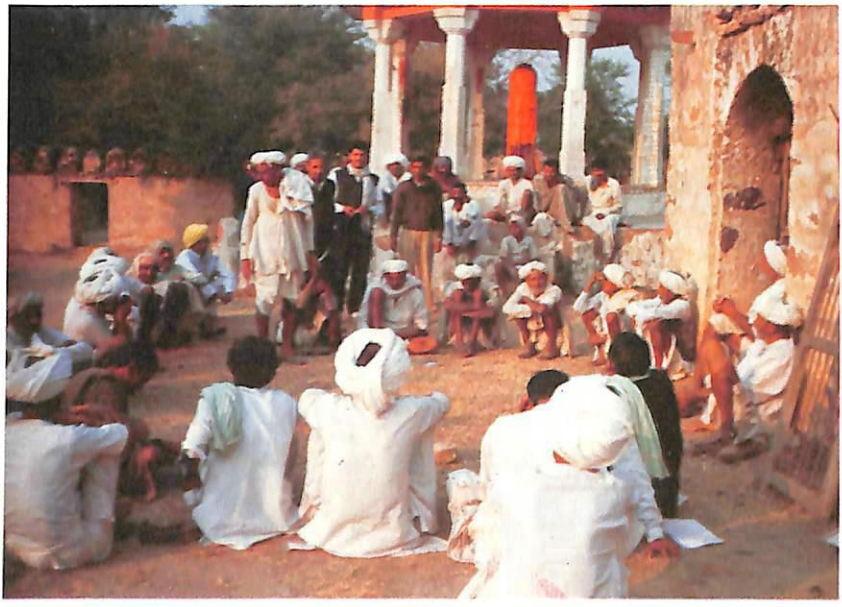

1986-'87 का साल संघ और गांव के बीच संवाद में ही बीता। 1987 के आखिर में पानी के प्रबंधन का काम आरंभ हुआ। इसी दौरान जंगल और गोचर बचाने की चर्चा भी शुरू हुई। पूरी पहाड़ियां नंगी हो गयी थीं। इस चर्चा के बाद सबसे पहले गांव के दक्षिण की तरफवाले जंगलों में हरे पेड़ों को काटने का सिलसिला बंद कराया गया। दिवाली से पहले कच्ची घास के काटने पर भी प्रतिबंध लगाया गया।

इनके सामलाती जंगलों और गोचर पर बाहरी आक्रमण बहुत ज्यादा होते थे। चूंकि यह गांव जयपुर और अलवर जिले की सीमा का गांव है, इसीलिए बाहर की भेड़-बकरियों का दबाव झेलने की विवशता इनके हिस्से ही आयी थी। डर की वजह से कुछ बोलते तक नहीं थे। पर अब ये बाहरी आक्रमणों और बाहरी दबावों का डटकर विरोध करने लगे। इन्हें इत्मीनान हो गया था कि हम बाहर के लोगों को अपना जंगल काटने से रोक सकते हैं। संस्था के साथ से उनमें यह चेतना आ गयी थी कि अपने वाजिब हक के लिए लड़ना और अपने हकों की रक्षा करना उनका नैतिक और प्रकृतिप्रदत्त अधिकार है। आज कालैड़ के चारों ओर हरे-भरे जंगल हैं। आसपास के गांवों में कालैड़ जैसी हरियाली कहीं भी देखने को नहीं मिलती। प्राकृतिक संसाधनों की मालिकी और हरियाली के तौर पर ये अलवर जिले का सबसे अनोखा गांव है।

दूसरों के लिए नदी बहाने वाला गांव
भांवता-कोल्याला

अरवरी नदी के ऊपरी क्षेत्र का गांव भांवता-कोल्याला पानी की गहरी पीड़ा झेलनेवाला गांव था। अस्सी के दशक में आये अकाल की भयंकर चपेट में आया यह गांव तबाही के एक असह्य दौर से गुजरा। सूखाग्रस्त इलाके के रूप में इसकी पहचान तो पहले से ही थी। तीन सौ से सात सौ मिमी औसत वर्षावाले इस क्षेत्र में आमतौर पर बारिश की अनिश्चितता बनी ही रहती है। इस गांव में तीन घंटे तक बारिश का होना लोग प्रकृति की मेहरबानी मानते हैं। लेकिन '87 के दशक में समुचित जल प्रबंधन नहीं होने के कारण प्रकृति जितना भी पानी बरसाती, सब बहकर कहीं और चला जाता। गांव में एक पुराना जोहड़ था, जो गाद और कीचड़ से भर चुका था। महिलाएं अकाल के उस दशक में सुदूर से पानी लातीं, जिसमें उनका सारा का सारा दिन बर्बाद हो जाता। उसके बाद खाना पकाने भर की ऊर्जा किसी तरह बची रहती, लेकिन जीवन के और पहलुओं पर सोचना उनके लिए नामुमकिन था। उस समय की स्थितियों पर यहां के लोग अब भी सिहरते हुए बात करते हैं।

पर आज भांवता-कोल्याला पूरी तरह बदल चुका है। आंखों को राहत और ठंडक पहुंचाने वाली हरियाली आज इसी भांवता-कोल्याला में है। एकदम से चकित कर देनेवाला बदलाव सबसे पहले इसी गांव में हुआ, जहां से अरवरी नदी की धारा शुरू होती है। गांववाले हर वक्त यह कामना करते रहते थे कि गांव में बारहमासी जल की व्यवस्था हो। आज इस गांव में उनकी कल्पनाएं सच की तरह मौजूद हैं तो लोगों की व्यापक जनसहभागिता के कारण ही। 1987 में तरुण भारत संघ से भांवता-कोल्याला के लोग जुड़े। दोनों ओर से श्रम और साधन लगे और ग्यारह जोहड़-जोहड़ी तैयार किये गये। प्रभाव दो साल में ही सामने आने लगा। लोग उत्साहित हुए तो नब्बे के साल में बाबजीवाला कच्चा बांध

बनाना शुरू किया । इस बांध से लोगों की उम्मीद थी कि 10.25 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में भू-जलस्तर ऊपर आ जाएगा ।

इस बांध पर काम करते हुए 1991 में लोगों ने दूसरा बांध बनाना भी शुरू कर दिया । सांकड़ा का बांध । इस बांध को पक्का बनाने का लक्ष्य था । बांध का जलागम क्षेत्र नौ वर्ग किलोमीटर आंका गया । यह बांध बाबजीवाले कच्चे बांध के ठीक ऊपर पहाड़ों में पानी के रास्ते को रोक कर बनाया गया । यह सब कुछ एक अभियान की तरह चला। भांवता-कोल्याला के लोगों ने सांकड़ा का पक्का बांध व बाबजी का कच्चा बांध के अलावा नाहरसिंह का जोहड़, बांडी जोहड़ी, भांवता छोछावाली जोहड़ी, खानियांवाली जोहड़ी, कोल्याला वाली जोहड़ी व शमशानवाली जोहड़ी बनायी । कुछ निजी जोहड़ भी बनाये गये । ठाकरोंवाला बांध, गोपाल तंवर का एनीकट व हरसहाय गुर्जर का एनीकट तैयार किया गया । इन सब कामों की बदौलत ही आज इस गांव में अरवरी नदी बहने लगी है । जंगल एकदम हरे हो गये हैं ।

जंगल हरा होने के पीछे कुछ परंपरा का भी साथ रहा । बीच में अभाव से उबरने के लिए और गांवों की तरह इस गांव में भी जंगल काटे गये । लेकिन फिर सब कुछ ठीक हो गया । यहां धराड़ी प्रथा बहुत पुरानी होने के कारण वृक्ष-मित्रता का इतिहास काफी समृद्ध रहा है । इसके बावजूद यहां जंगल बर्बाद हुआ और फिर आगर, बामनवास और डेरा जैसे कस्बों के पास के जंगल क्रमशः खत्म होते चले गये । आगर, बामनवास और डेरा, ये ऐसे कस्बे थे, जहाँ लोगों का पेड़ों के साथ किसी भी किस्म का भावनात्मक रिश्ता नहीं था । लेकिन इन तमाम गतिविधियों के बावजूद धराड़ी के बचे रहने और सामलात देह बचाने की परंपरा ने एक सकारात्मक हस्तक्षेप किया है । यों तो पड़ौसी गांवों की देखा-देखी कुछ गांववाले भी ढलान पर से गीली लकड़ी काटकर ईंधन और चारे के रूप में इस्तेमाल करने के लिए पटक लिया करते थे । पर इस प्रक्रिया को थामने में तरुण भारत संघ द्वारा आयोजित की गयी पदयात्राओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । कुछ नियम-कायदे तय किये गये। ग्रामसभाओं की नियमित मासिक बैठकें करके नियम-कायदों के अनुकूल

माहौल बनाने की कोशिश की गयी । जहां-जहां भी अपराध हुए, दंड वसूल किये गये । दरअसल भांवता कोल्याला पानी का लाभ पाने वाले सबसे पहले गांव होने के कारण वन रक्षा के प्रति भी प्रोत्साहित और सक्रिय हुए । इन दोनों गांवों के लोगों ने न केवल अपने यहां निगरानी दस्ते बनाये, बल्कि दूसरे गांवों में सभाएं करके वन रक्षा के पक्ष में माहौल बनाया और उन गांवों के लोगों को भी अपने साथ लिया, जो गड़बड़ी किया करते थे । यहां के अनुभव ने पूरे क्षेत्र में पेड़ों के प्रति सोच को बदलने में ऐसी बड़ी भूमिका अदा की कि वन विभाग के उच्च अधिकारियों तक का मुखर समर्थन यहां के कामों को मिला।

प्राकृतिक संसाधनों के रक्षण-पोषण की एक पूरी योजना के तहत भांवता-कोल्याला में काम हुआ । भांवता के अर्जुन गुर्जर अलवर के युगल पत्रकार राजेश रवि और जिनेश जैन को बताते हैं कि हमारी तकदीर बदल गयी। अब हम दिल्ली की बड़ी सरकार के नुमाइंदों के साथ बैठकर उन्हें सही रास्ता बताते हैं । 6 फरवरी 1996 को वन पर्यावरण की संसदीय समिति हमारे गांव में आयी, तो हमने उन्हें अपना जंगल दिखाया और बताया कि देश में जंगल बचाने हैं, तो बस केवल एक ही रास्ता है, गांव के जंगल व पहाड़ गांव को सौंप दो । धन्ना अपनी चमकती हुई आंखों के साथ कहता है, **पांच सात मण दाणा श्याळा की फसल में होवें छा । इस साल में 77 मण नाज पैदा हुआ छै । अब तो कांई पूछेगा कुआं में इंजन भी लग गयो छै । या ही कुआं सूखा पड़ा रहवे छां। अब इसी से मेरा पूरा खेत पावे छै । दूसरों को भी पानी देवुं** हूं । भांवता के युवक छोटेलाल कहते हैं कि हमने हमारी आँखों से देखा कि जमीन बंजर पड़ी थी । कुओं में पानी नहीं था । लोग कच्ची शराब आदि बनाने के काम में लगे थे । पर जब तरुण भारत संघ ने काम शुरू किया, तो हमें कुछ बदलाव लगा । गांव में जोहड़ों का काम चला, तो एक फसली जमीन दो फसली हो गयी । बंजर जमीन में भी फसल होने लगी । छोटेलाल कहते हैं कि **1986-'87 में तो यहां जंगल नहीं के बराबर हो गया था । फिर काम के साथ-साथ जंगल भी बढ़ता गया।**

गांववालों को सबसे पहले वयोवृद्ध सुंदर पटेल ने समझाया। वह बताते हैं कि 1987 में पदयात्रा करते हुए तरुण भारत संघ गांव में आया। उस समय हमारे कुओं में दो सौ हाथ पर भी पानी नहीं था। जमीन बंजर पड़ी थी। जब संस्था के साथ काम करने की बात चली, तो संघ वालों ने हमें बताया कि अगर कोई भी काम करना है, तो उसमें कम से कम 25 प्रतिशत खर्चा गांववालों को करना होगा। फिर गांव में काम शुरू हुआ। पानी बचाने के लिए हमने बांध, जोहड़, एनीकट आदि बनाये। जंगल बचाने के लिए गांववालों ने पेड़ लगाये और ग्रामसभा में तय किया कि अब कोई भी व्यक्ति पेड़ नहीं काटेगा। पेड़ नहीं काटने का कानून भी अपने स्तर पर बनाया। गांववालों ने पेड़ काटने वालों पर दंड की व्यवस्था की।

आज ग्राम स्वराज की राह पर भांवता-कोल्याला सबसे अव्वल गांव है। क्योंकि बिना किसी की मदद के अपने गांव के सारे काम स्वयं कर लेता है। इनके प्रयासों से ही अरवरी नदी अब पूरे साल बहने लगी है। इन्होंने हजारों लोगों का पानी वाला समाज बनाने का महान काम किया है। इन्हें इस अंचल का भागीरथ कहा जा सकता है।

जैली कांड की अविस्मरणीय स्मृति

अरवरी नदी के जलागम क्षेत्र में पड़ने वाला एक गांव है बस्सी। कालैड़ से सटा हुआ। यहां खानरी के नाले पर सोतकारा बांध बनाने का निर्णय लिया गांववालों ने। खानरी के नाले के पास पेड़-पौधे बहुत थे। गांववाले बताते हैं कि जंगलात के लोग चाहते थे कि यहीं वृक्षारोपण का लंबा कार्यक्रम चलाया जाये ताकि खाने-पकाने का एक जरिया मिले, पर गांववाले अड़ गये। ग्रामसभा में बैठकर ग्रामीणों ने निर्णय लिया कि इस नाले पर बांध बनना चाहिए ताकि आसपास के पेड़-पौधों को नमी मिले। निर्णय लेकर तुरंत ही काम चालू कर दिया गया।

तीन-चार दिन काम चला ही था कि जंगलात के लोग आ धमके। गांववालों को वहां काम करने से रोकना चाहा। कहा कि हम लोग यहां वृक्षारोपण करना चाहते हैं, पर बुजुर्गों से लेकर नौजवानों तक ने साफ मना कर दिया। यहीं से शुरू हुआ जंगलात व गांववालों के बीच विवाद।

भांवता में अरवरी नदी के ऊपरी क्षेत्र का एक बांध

जंगलातवालों ने एक दिन बगैर नोटिस के कन्हैयालाल अहीर को जेल में डलवा दिया और उस पर अवैध केस डाल दिया। पूरे गांव में मानो आग लग गयी। लोग इकट्ठे हुए और हजारों की तादाद में जा पहुंचे जयपुर जेल। स्त्रियां तक गयीं टैक्टरों में बैठकर। और कन्हैयालाल की जमानत कराके ले आये सब के सब। पुनः काम शुरू हुआ। बांध के लिए इस सत्याग्रह ने इतनी ऊर्जा भर दी ग्रामीणों में कि दस दिन के अंदर-अंदर बीस फुट ऊँचा बांध बना दिया गया।

इस कांड को लोग आज भी जैली कांड के नाम से जानते हैं। अरवरी नदी की बस्सी से होकर बहने वाली जलधारा इस कांड का भी परिणाम है। बस्सी की मूल ढाणियों से अरवरी नदी तक पहुंचने के लिए पत्थरों का रास्ता है, जो कहता है कि अरवरी का रास्ता कभी यही होगा, और जब अरवरी के किनारे जाकर कदम रुक जाते हैं, तो चारों ओर दिखते हैं हरे-भरे खेत जहां गेहूं के मौसम में ऊंची-ऊंची बालियां आंखों को ठंडक देती हुई लहराती रहती हैं।

कैसे संभव हुआ यह सब ?

1985 में जब तरुण भारत संघ ने इस अंचल में प्रवेश किया था तब यही बदहाली अपनी चरम सीमा पर थी। यहां-वहां बस पीपल और बबूल के कुछेक पेड़ और वे भी एकदम बदरंग। दुखी-दुखी से। धूलभरी सड़कें जिनके किनारे न कोई पेड़, न छाया। अरावली पहाड़ियां एकदम लुटी-लुटी सी। कहीं-कहीं कुछ हरियाली दिख जाती थी पहाड़ियों की चढ़ाई पर झाड़ीनुमा। पर वह भी ऐसी नहीं कि बादलों को न्यौत सके या बरसे पानी को थाम सके और धरती के भीतर जाने में मदद कर सके। ऐसा लगता था कि साल-दर-साल जारी रही कारगुजारियों ने भयंकर असंतुलन पैदा कर दिया था। इसे दुरुस्त किये बिना न तो वर्तमान को झेले जा सकने योग्य बनाया जा सकता था और न भविष्य को सुखद। पेड़ों को ऐसे काट दिया गया जैसे पहाड़ पर झाड़ू मार दी गई हो। धरती के भीतर संगमरमर अकूत भंडार खोज लिए गए थे। उन्होंने ऐसे लालच को जन्म दे दिया था जिसके चलते मानव एवं प्रकृति से प्रेम और इनका हित-चिंतन फालतू का काम लगता था। खनन के काम ने धरती को जिस तरह फोड़ा और क्षत-विक्षत किया था वह बेहद कुरूप लगता था। जैसे वे धरती के शरीर पर लगे घाव हों। हरियाली गायब होजाने का परिणाम यह हुआ था कि कभी-जभी होने वाली बरसात के साथ बड़े-बड़े पत्थर और मिट्टी नीचे आ जाते थे। पहाड़ों में खाइयां-खंदकें दिखने लगी थी।

शुरू में तरुण भारत संघ ने गोपालपुरा गांव पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। 1985-86 में जो हालत राजस्तान के अन्य गांवों की थी, वही यहां की भी थी। भीषण अकाल की जकड़ कस गयी थी गांव पर। कुएं सूख गये थे। मिट्टी का क्षरण हो गया था। पानी लाने के लिए डेढ़-दो किलोमीटर दूर जाना पड़ा था। खेती घाटे का सौदा बन गयी थी। इसका नतीजा यह हुआ कि जो नौजवान स्वस्थ एवं हृष्ट पुष्ट थे, वे काम की तलाश में दिल्ली अहमदाबाद की ओर कूच कर गये। तरुण भारत

संघ से यह बदहाली देखी नहीं गयी । संस्था ने विकास अधिकारी तथा कनिष्ठ अभियंता से सहायता के लिए संपर्क साधा क्योंकि चैक डैम ऐसी बुरी हालत में थे कि उनकी तुरंत मरम्मत न करायी जाये तो वे बेकार थे।

विकास अधिकारी और कनिष्ठ अभियंता ने सरकारी कोष से कुछ भी करा सकने में अपना असमर्थता जतायी । बहरहाल, उन्होंने यह आश्वासन अवश्य दिया कि वे तकनीकी मदद कर सकते हैं बशर्ते गांव वाले स्वैच्छिक रूप से काम करने को तत्पर हों । तरुण भारत संघ इस इरादे के साथ गोपालपुरा लौटा कि गांववालों को श्रमदान के लिए राज़ी कर ही लेगा । सफलता मिल भी गयी । नमूने के तौर पर एक जोहड़ का काम हाथ में लिया गया । खुदाई का काम शुरू कर दिया गया ताकि जल-संचय के लिए उपयुक्त गहराई मिल सके । दो साल बाद ही गांववालों को जोहड़ का महत्त्व और इसकी उपयोगिता दिखाई पड़ने लगी। 1986 के मानसून के बाद जोहड़ भर गया और पहले की तुलना में अधिक समय तक बना रहा । गांव वालों को उत्साह दुगना हो गया और वे पक्के काम (पत्थर की चिनाई) के बारे में सोचने लगे । कनिष्ठ अभियंता ने न केवल तकनीकी सहायता दी बल्कि निर्माण कार्य की निगरानी भी की । इसमें तरुण भारत संघ की भूमिका प्रोत्साहन देने व सरकारी विभागों तथा गांव के लोगों के बीच तालमेल तक की ही रही। गांव वालों के लिए यह अचंभे की सी ही बात थी, या एक तरह का चमत्कार, क्योंकि इस तरह का कायाकल्प कई पीढ़ियों ने भी नहीं देखा था। कई बार किसी चीज़ को देख लेने के बाद भी विश्वास नहीं होता है कि ऐसा हो गया है । यही हालत गांववालों की भी थी । उनके श्रमदान व तरुण भारत संघ की प्रेरणा का यह नतीजा हो सकता है, यह सब उनकी कल्पना से परे था ।

1400 फुट लंबे, 20 फुट ऊंचे और 50 फुट चौड़े बांध के पुनर्निर्माण में 350 परिवारों की कड़ी मेहनत लगी । यह कोई आसान काम नहीं था, क्योंकि यह कुल काम 1000 काम के दिनों के बराबर था। यही नहीं मरम्मत के पक्के काम की लागत में उन्होंने अपना अंशदान

भी दिया । यह बांध इतना बड़ा था कि 600 बीघा जमीन की सिचाई के लिए तथा गांववासियों की स्वयं की व मवेशियों की जरूरत के लिए पानी पर्याप्त था। गोपालपुरा से प्रेरणा लेकर गोविंदपुरा ने भी इस तरह का काम हाथ में लिया। **कासा** नामक एक विकास एजेंसी ने सहायता के रूप में काम के बदले अनाज उपलब्ध कराया और लगभग 20,000 काम के दिनों के श्रम से 2000 फुट लंबा, 5 फुट ऊंचा तता 15 फुट चौड़ा बांध बनकर तैयार हो गया ।

ये उदाहरण सिर्फ यही बताते है कि सामुदायिक साझे प्रयत्न बेहतर सफल हो सकते हैं बशर्ते लोगों की प्रतिबद्धता इनके प्रति हो । दरअसल गोपालपुरा और गोविंदपुरा के लोगों की जो उपलब्धि थी वह उस सामुदायिक विकास का सटीक और मूर्त उदाहरण था, जो 1952 में स्वीकृत प्रथम पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों में रेखांकित था । प्रथम पंचवर्षीय योजना की नीति एवं रणनीति में यह बात बीज रूप में निहित थी कि टिकाऊ और स्थाई लाभ तभी सुनिश्चित किये जा सकते हैं जब समुदाय की भरपूर भागीदारी हो । गोपालपुरा और गोविंदपुरा के लोगों ने यह अकाट्य रूप से प्रदर्शित कर दिया कि गांववाले अपने फैसलों, श्रम और प्रबंधन कौशल के बूते पर क्या-क्या उपलब्धियां अर्जित कर सकते हैं ।

सत्ता के दलालों को यह कैसे बर्दाश्त हो सकता है कि गांव के असहाय समझेजाने वाले लोग अपने बूते पर यह सब हासिल कर लें और खुशहाली की राह पर चल पड़ें । उन्होंने गांव के लोगों को डराना-धमकाना शुरू कर दिया । तरुण भारत संघ पर फब्तियां कसना शुरू कर दिया । काम साफ बोल रहा था इसलिए सिंचाई विभाग के अधिकारियों को लगा कि उनकी उदासीनता और निष्क्रियता उजागर हो गई है । गांव वालों और तरुण भारत संघ की पीठ ठोंकने के बजाय उन्होंने अडंगेबाजी शुरू कर दी । अपनी खीझ उतारने के लिए पुनर्निर्मित जोहड़ और बांध को गैर कानूनी करार दे दिया । यह तो तरुण भारत संघ और गांव वालों का ही जीवट था कि उक्त आदेश को रद्द करने के लिए सरकार विवश हो गई । और आज 1997 में तो नक्शा ही बदल गया है । तरुण भारत

संघ द्वारा जनता के सहयोग से किये गये कामों को गैर कानूनी करार देने वाली सरकार आज खुद संस्था सामने प्रस्ताव कर रही है : कि तरुण भारत संघ गांव वालों के साथ मिलकर बांधों का पुननिर्माण कर दे । इसके लिए घन उपलब्ध कराने को भी सरकार प्रस्तुत है । आखिर ऐसा हुआ कैसे ? सच बात यह है कि नौकरशाही के पास न तो स्व-प्रेरणा का बल था और न समुदायिक भाव । और यही कारण है कि जो काम सरकार को अपने सामान्य दायित्वों के रूप में पूरे कर देने चाहिए थे उसने वे भी नहीं किये। तरुण भारत संघ के सहयोग और गांववालों की पहल से अब 315 गांवों में लगभग 1500 जोहड़, बांध पुन:निर्माण अथवा नव निर्माण की गौरव गाथा बयान करते दिखाई पड़ रहे हैं । इन उपलब्धियों का सूत्र योजना तैयार करने, निर्णय लेने, क्रियान्वयन, निगरानी तथा मूल्यांकन तक की समूची प्रक्रिया में समुदाय की मुखर भागीदारी में ही खोजा जा सकता है ।

तरुण भारत संघ की रणनीति

यहां यह उल्लेखनीय है कि तरुण भारत संघ ने भीकमपुरा के आस-पास के गांववालों के साथ निरंतर और जीवंत संवाद के जरिये ही अपनी कार्यशैली विकसित की थी । इस कार्यशैली का विकास क्रमश: पंचशील के रूप में उभर कर सामने आया ।

क्या है यह पंचशील ?

1. किसी भी प्रयत्न को सामूहिक होना चाहिए यानी जिसमें सभी लोगों की सहभागिता अनिवार्य तौर पर हो तथा सभी को समानुपातिक लाभ मिलें;

2. अनौपचारिक संवाद और विचार-विमर्श (हरेक को अपनी बात कहने का हक हो । हरेक की बात सुनी ही जाये) के ज़रिये एक ऐसा वातावरण निर्मित किया जाये जो लोक अनुभव के आधार पर सामूहिक बुद्धि-बल, सामूहिक विवेक और सामूहिक मेधा को स्थापित कर सके;

3. एक बार निर्णय ले लिया जाये तो फिर कड़ाई से उसका पालन किया जाना हरेक व्यक्ति की जिम्मेदारी बन जायेगा। समुदाय को आत्म-अनुशासन के अपने नियम व दस्तूर बनाने होंगे जो निर्णयों के सही क्रियान्वयन को सुनिश्चित कर सकें;

4. समुदाय का, व्यक्तिशः और सामूहिक रूप से, यह दायित्व होगा कि निर्णय ईमानदारी व निष्ठा के साथ क्रियान्वित हों; और

5. समुदाय जल, जंगल और जमीन के अपने कामों में बाहरी सहायता को, उनके काम की प्रक्रिया को सहज बनाने तथा मार्गदर्शन प्रदान करने वाले प्रेरक तत्व के रूप में ही देखेगी और इसी रूप में उसका उपयोग करेगी।

किसी को भी यह लग सकता है कि ये तो बड़ी ऊंची-ऊंची बातें है। अनपढ़ और बदहाली की जिंदगी जीते गांव वाले कैसे इस तरह के सूत्रों को विकसित कर पाये होंगे जबकि उनमें से अधिकांश तो इनके अर्थ भी नहीं समझ पायेंगे। सच यही है कि ये सब बातें एकदम गंवई अनुभवों से निकलकर आयी थीं। अनपढ़ लोगों के पास अपने अनुभव हैं, पीढ़ियों से विरासत में मिलता रहा ज्ञान है, और इस सबसे ऊपर बदहाली के दौर के अपने अनुभव भी हैं - बेहद कड़वे। और उन्ही से वे रास्ता निकालते हैं। आज बहुत सारे भारी भरकम शब्द प्रचलन में हैं - संलग्नता, सहभागिता, उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय प्रक्रिया, जवाबदेही, पारदर्शिता आदि। पढ़े-लिखों के लिए ये शब्द तोता-रटंत होने के कारण वजनदार (पर साथ ही निरर्थक भी) लग सकते हैं। पर बदहाली के दौर को भोगकर, खुशहाली की राह पर चले गांववाले अपने संचित अनुभव और काम की प्रक्रिया की समझ के कारण इनके सार को समझते हैं। इनके मर्म को समझते हैं। यह उनके लिए सिद्धांत की बात नहीं है। पंडिताऊपन की निशानी नहीं है। उनके काम से उभर कर आया सच है। इसलिए उनका अपना है, आयातित या थोपा हुआ नहीं। और यह बात उनसे बात करके किसी की भी समझ में आ सकती है। उनकी किसी थोड़ी अधिक चर्चा के बाद वे कारणों की तह में पहुंच जाते हैं। रास्ता भी निकाल लेते हैं।

यह रास्ता किसी एक बुद्धिमान व्यक्ति का सुझाया रास्ता नहीं होता। हरेक व्यक्ति बात को आगे बढ़ाता है। कोई बात को एक नया मोड़ दे देता है और बात बनने लगती है। हम इस प्रक्रिया को कारगर इसलिए भी मानते हैं कि इससे गांववालों का आत्मविश्वास बढ़ता है। वे हीनता के शिकार नहीं होते। ठेठ देशी, अपनी धरती से उपजा सोच। और वैसे ही साधन।

क्या बदलाव आया है ?

किसी भी काम की सार्थकता का पैमाना क्या हो ? बस यही कि वे उद्देश्य कितना पूरे हुए हैं जिन्हें ध्यान में रखकर वह काम शुरू किया गया था। यह भी, कि लोगों के जीवन में इससे क्या बदलाव आया है। यानी पहले के जीवन और आज के जीवन के बीच क्या फर्क है ? है भी या नहीं ? सिर्फ यही काफी नहीं है कि जोहड़ पानी देखकर, सारे साल देखते रह कर हम यह कह दें कि बड़ा फर्क आ गया है। यह फर्क सकारात्मक असर को तो दिखाता है, पर कहानी यहीं खत्म नहीं होती। यहां से तो शुरू होती है।

जोहड़ निर्माण से या नदी के पुरुज्जीवित हो उठने से पानी की सतत् उपलब्धता बेशक बड़ी चीज़ है। पर यह और भी बड़ी चीज़ बन सकती है जब यह पता चले कि इसने **डार्क ज़ोन** माने जाने वाले अंचल में प्रकाश की किरणें बिखेर दी हैं। प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है। प्रसन्नता और खुशी का भी। पानी से खेती-बाड़ी (जहां-जहां भी यह संभव है) का काम आसान हुआ। इससे भी अधिक असर पड़ा इसका पशुपालन पर। पानी बढ़ने से चारा बढ़ा। इन दोनों से दूध की उपज बढ़ी। यानी गांव वालों की आय बढ़ी। आय बढ़ी तो रोज़मर्रा की चिंताएं कम हुई। पहले रोज़ी-रोटी की तलाश में, काम की तलाश में भटकना पड़ता था वह बंद हुआ। यानी पलायन गुज़रे ज़माने की बात बन गया। आत्म सम्मान भी बढ़ा है। पहले बाहर वाले यहां की कठिन जीवन स्थितियों के कारण अपनी बेटियां इन गांवों में नहीं देना चाहते थे। इसे यहां के नौजवानों के मां-बाप अपनी हेठी मानते थे। ऐसा मानना गलत भी नहीं

था । अब नदी-जोहड़ की यश गाथा दूर-दूर तक पहुंच चुकी है । जिसे यहां के लोग धब्बा मानते थे वह अब दूर हो गया है ।

पानी जोहड़ों-बांधों में टिकने लगा, नदी साल भर बहने लगी । धरती की नमी का बढ़ना इससे सीधे जुड़ा होता है । परिवार चिंतामुक्त होने लगे तो अपने परिवेश के बारे में सोचने लगे । सरकारी लालच, जंगलात के कारिंदों के भ्रष्टाचार, ठेका प्रथा और दुर्दिनों के सताये गांव वालों की क्षणिक स्वार्थवृत्ति के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर जंगल नष्ट हो गए थे । अब ये लोग फिर से सोचने लगे जंगल को हरा-भरा बनाने के बारे में । फिर से सघन बनाने के बारे में । ग्राम सभाएं बनीं । जंगल बचाने के दस्तूर बने । नियम-कायदे बने। दंड विधान तय हुआ । सब

नदी के सजल होने से प्रफुल्लित महिलाएं

कुछ गांव के स्तर पर । अपनी प्रेरणा से । पानी की कृपा से । इससे यह भी उजागर हुआ कि गांव के लोगों के भरोसे छोड़ दिया जाये तभी जंगल बच सकता है । न तो सरकारी वन विभाग की जरूरत है, न किसी वन रक्षक/वनपाल की । क्योंकि अनुभव यह बतलाता है कि ये कारिंदे वनों के रक्षक तो कतई नहीं है । विनाश के लिए चाहे अकेले ये ही जिम्मेदार न हों । प्राकृतिक संसाधनों के दृष्टिहीन दोहन की सरकारी नीतियां भी जिम्मेदार हैं । अपराधी तत्व (माफ़िया) भी जिम्मेदार है ।

पानी ने महिलाओं के जीवन को गहरे प्रभावित किया है । पहले वे दिन-रात पानी के जुगाड़ मे लिए खटती रहती थीं । पानी परिवार के लिए और पशुओं के लिए भी और उस सबके बाद घर के बाकी सारे काम । इस अंचल की महिलाओं का जीवन बड़ा कठिन था । आज उनके जीवन में जो बदलाव आया है । वह देखने की चीज है । देखकर ही समझ में आ सकता है । हमारे काम के जो मूल्यांकन हुए हैं उनमें यह बात उभर कर आयी है । अभी हाल में **डॉ. शची आर्य** ने दो गांवों का अध्ययन किया है । खास मुद्दा ही यह था कि पानी के काम ने महिलाओं का कितना सशक्तीकरण किया है । उनका यह निष्कर्ष बड़ा सटीक और उत्साहवर्द्धक है कि महिलाओं की मुखरता बढ़ी है। घर के बाहर के, यानी समुदाय के कामों में उनकी सक्रियता व सहभागिता बढ़ी है । पानी से जुड़े, जोहड़-नदी के, कामों में तो उनकी पहल पुरुषों की तुलना में भी उल्लेखनीय है । वन रक्षा के काम में प्रेरणा और निरानी का काम भी वे बेहतर कर पाती हैं । बच्चों को संस्कारित भी करती हैं कि वे खेल-खेल में भी पेड़ों को नुकसान न पहुंचा बैठें । महिलाओं के जीवन में यह बदलाव भी साफ दिखाई पड़ता है कि उन्हें आराम मिलने लगा है । बेहतर खुराक भी आसानी से मिल जाती है । आराम का उन्हें अभ्यास नहीं है तो कुछ और काम करना चाहती हैं । ऐसा कि समय भी कटे और कुछ अतिरिक्त आय भी हो जाये। और सबसे बड़ी बात यह कि वे अपने बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य के बारे में भी सोचने लगी हैं ।

बिना पूरे प्रसंग को सामने रखे, पानी और जन-चेतना का समीकरण कुछ अटपटा सा लग सकता है । पर यहां मामाला चाहे

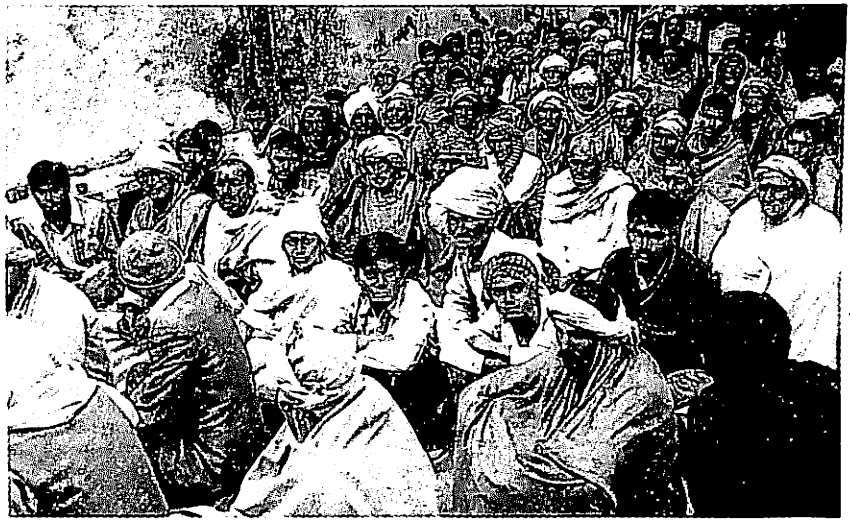

जल जीव तथा जंगल बचाने के लिए चर्चा करते ग्रामवासी

जंगलात वालों की कारगुजारियों का हो या खनन-विरोध का, पानी ने लोगों को अपनी ताकत का अहसास करा दिया है। उनकी निर्भयता बढ़ी है क्योंकि समूह की शक्ति का वास्तविक अर्थ उनकी समझ में आने लगा है। इसलिए वे सामलाती देह का प्रबंधन करने को तैयार हैं। अपनी परंपराओं के अनुरूप। वे जंगल का प्रबंधन अपने हाथ में लेने को तैयार हैं। वे रचनात्मक कामों को सफल बनाने व साकार रूप देने के लिए अपना समय और श्रम देने को तैयार है।

बहुतों को यह अतिशयोक्तिपूर्ण और दंभपूर्ण लग सकता है। पर ऐसा है नहीं। **अरवरी** ने, **पूरे साल बहने वाली अरवरी** ने, और पानी से लबरेज जोहड़ों ने परिवेश को ही नहीं बदला है, लोगों की जीवनशैली को भी बदल डाला है। उनके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित किया है। उन्हें एक लक्ष्य दिया है। एक मिशन दिया है।

नदियां सभ्यताओं और संस्कृतियों का पालना रही हैं। पुनरुज्जीवित होती नदी सभ्यता और संस्कृति को एक नया रंग दे रही है। नया रूप दे रही है। लोगों को एक नयी पहचान दे रही है। ❑

अरवरी नदी का जलागम क्षेत्र

पैमाना - 1:250,000

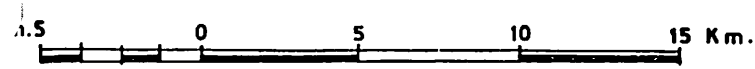

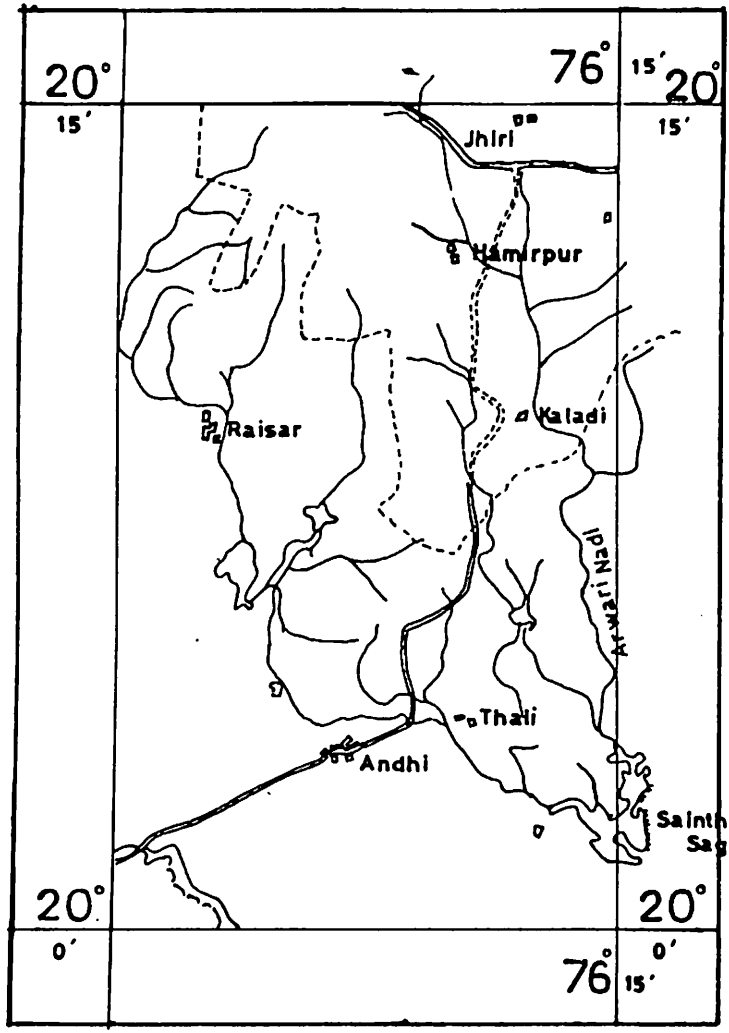

सूची

- जिला सीमा
- तालाब
- नदी
- गांव

N